'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २३ | वाराणसी, शनिवार, २१ फरवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

सूर्योपासना के बाद पदयात्रियों से

कावा जाते समय मार्ग में ७-१-'५९

आनंद और साधना का उत्कृष्ट माध्यम : ध्यान

भोजन के लिए सभीको न्योता दिया जाता है और कोई नहीं आता तो उसे बुलाया जाता है। किन्तु प्रार्थना के लिए ऐसी बात नहीं है। हम प्रार्थना के लिए किसीको न्योता नहीं देते और न उसके न आने पर उसे बुलाने ही जाते हैं। सांसारिक और पारमार्थिक जीवन के बीच यह एक महान अन्तर पाया जाता है। लेकिन यह ठीक नहीं है। प्रार्थना के लिए भी लोगों को बुलाना चाहिए।

मौन और प्रार्थना

यह प्रार्थना भी मौन ही की जाय तो सभी तरह से अच्छी कही जायगी। सर्व-साधारण प्रार्थना में देखा जाता है कि सभी समान रूप से श्लोक नहीं बोल पाते। किसीका उच्चारण अच्छा होता है और वह आगे बढ़ जाता है तो कोई पिछड़ जाता है। इससे एकाग्रता में विक्षेप होता है। मौन प्रार्थना में किसी तरह के विक्षेप की गुंजाइश ही नहीं है। बैठने के लिए आसन हो तो उसपर बैठ जायँ और न हो तो जमीन पर ही बैठें। इसमें किसी भी अन्य साधन की जरूरत नहीं है। एकमात्र चित्त ही साधन है। कुछ करना-धरना नहीं है। वाणी का भी उपयोग करने की जरूरत नहीं। केवल चित्तरूप साधन से ही प्रार्थना की जाती है। याने यह पूर्ण अपरिग्रही प्रार्थना हुई। विद्वान-अविद्वान, संगीतज्ञ-असंगीतज्ञ, किसीको बोलना आये या न आये—सभी इस प्रार्थना में भाग ले सकते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि धीरे-धीरे सामूहिक ध्यान का विकास करना चाहिए।

ध्यानयोग का क्रम

ध्यान किस प्रकार किया जाय, क्यों किया जाय, मन में क्या लाया जाय ? मन से क्या निकाला जाय और वह किस तरह निकाला जाय, यह सब सीखना और सिखलाना होगा। लेकिन पहला कदम तो यही कहा जायगा कि बिना बोले ठीक समय पर प्रार्थना-सभा में पहुँच जायँ। जो न आये हों, उन्हें भी बुलाया जाय। फिर सभी बैठकर गंभीरतापूर्वक मौन रखें। भक्त लोग 'राम-राम' आदि मन्त्र जप करते हैं। किन्तु योगियों ने तो एक सादा-सा जप सिखलाया है, जिसमें कुछ भी बोलना नहीं पड़ता। वह मन्त्र है : 'सोऽहम्'। श्वासोच्छ्वास के साथ जो हवा बाहर फेंक दी जाती है, वह 'अहम्' है और जो अच्छी हवा बाहर से अन्दर ली जाती है, वह 'सः' याने परमेश्वर की हवा है। इसी तरह दृष्टि में भी भावना होनी चाहिए।

जीवन में हम लोग अपने बौद्धिक विचारों को बाहर फेंकते हैं और आत्मिक विचारों को अन्दर लेते हैं। इस तरह देखें तो सूर्यनारायण विचारों के प्रतीक हैं और वायु वासना-शुद्धि का साधन है। वासना-शुद्धि के लिए बौद्धिक विचारों को निकालकर आत्मिक विचारों को अन्दर लेना चाहिए। ये दोनों मिलकर ध्यान होता है। इसलिए श्वासोच्छ्वास के साथ ध्यान होता है। हमारे विचारों में सूर्य किरणों का प्रवेश होता है और इन विचारों से हम चित्त को पूर्ण करते हैं। बाहर विशाल आकाश है तो हृदय में भी एक छोटा-सा आकाश है। विशाल आकाश के नीचे बैठकर ध्यान करना चाहिए। यदि वर्षा होती हो तो भीतर बैठकर कर सकते हैं। शरीर को गौण किया ही जाय, यह जरूरी नहीं है। फिर भी जहाँ तक हो सके, व्यापक आकाश के नीचे एक ओर वासना-शुद्धि, प्राणशुद्धि की जाय तथा दूसरी ओर सूर्य-किरणों के प्रवेश से संकुचित विचार त्याग दिये जायँ। इससे महान आकाश का अनुसन्धान और संकुचित विचारों का त्याग, दोनों सधते हैं।

पञ्चमहाभूतों में से पानी और अन्न (पृथ्वी और जल) छोड़कर तीन भूतों (तेज, वायु और आकाश) के साथ ध्यान में संबन्ध आता है। अन्न और पानी का भी सेवन किया जाता है, पर वह अलग साधना है। उसका समावेश कर्मयोग में होता है। अन्न और पानी के अनुसन्धान के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। कुआँ खोदना पड़ता है, नहरें बनानी पड़ती हैं और खेती करनी पड़ती है। रसोई पकानी पड़ती है। कर्मयोग की साधना में ये दो भूत प्रधान होते हैं और ध्यान-योग में शेष तीन भूत। अतः इसका आमन्त्रणपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

मुझे याद है कि आश्रम में कई बार गीता का पारायण एक-एक घंटे में हो जाता था। पाँच-पाँच मिनट में एक-एक अध्याय पाठ हो जाता था। मैंने बापू से पूछा कि यह पाठ इतने जल्दी क्यों किया जाता है ? उन्होंने कहा कि धीरे-धीरे चलें तो वाक्य का अर्थ सहज ही ध्यान में नहीं आता। वाक्यार्थ के लिए

एकदम बोलना चाहिए। अवश्य ही एक पद अभी कहा जाय और दूसरा आध घंटे से तो उससे अर्थ का बोध न होगा, अतएव वाक्यार्थ बोध में सन्निधि अपेक्षित है। फिर भी जल्दी बोलना भावना के लिए ठीक नहीं है। प्रार्थना तो शान्तिमय ही होनी चाहिए।

अल्प समय की तन्मयता

जीवन कर्मयोगमय होने से समय बचाने की इच्छा होना जरूरी है। यह इच्छा ध्यान में कुछ भी बाधा नहीं डालती। क्योंकि जितना समय निश्चित हो, उतना ही ध्यान किया जाय। जब मैं जेल में था तो कोटीबाबाजी पवनार में थे। उन्होंने धीरे-धीरे ध्यान बढ़ाना शुरू किया। उन दिनों प्रातः ४॥ बजे प्रार्थना हो जाती थी। प्रार्थना के बाद ही वे ऊपर छत पर बैठकर ध्यान करने लगे। उनका ध्यान का अभ्यास इतना बढ़ गया कि एक दिन वे प्रार्थना करके ध्यान के लिए बैठे तो दोपहर को दो बजे तक ध्यान करते रहे। वे अत्यन्त तन्मय हो गये थे। उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि 'इस तरह मेरा ध्यान धीरे-धीरे बढ़ रहा है और एकाग्रता में पता ही नहीं चलता कि समय किस तरह बीत जाता है। इसमें बड़ा ही आनन्द आता है। आज तो सुबह चार बजे से दोपहर के दो बजे तक ध्यान चला। मुझे बड़ा ही आनन्द आया।' मैंने उन्हें उत्तर भेजा कि 'धीरे-धीरे आपकी ध्यान-शक्ति बढ़ रही है और उससे आप आनन्द का अनुभव करते हैं, यह तो बहुत अच्छी बात है। किन्तु अब इस आनन्द का संयम करना चाहिए। ध्यान के समय घड़ी रखें और १५ मिनट या और भी कुछ अधिक समय तय कर बैठ जायँ। इन १५ मिनटों में उतना आनंद आना चाहिए, जितना कि ८-१० घंटों में आता है। आजकल 'सैक्रीन' नामक एक चीनी निकली है, जिसके एक कण से एक चम्मचभर शक्कर की मिठास आ जाती है। ध्यान में भी ऐसा ही हो सकता है।' उन्होंने मेरे सुझाव के अनुसार कार्यक्रम शुरू किया और एक महीने बाद मुझे दूसरा पत्र लिखा कि 'यदि आप यह साधना मुझे न बताते तो मैं ध्यान में आसक्त हो जाता। आपने इसे बताया, इसलिए मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है। इसका मानसिक परिणाम भी बहुत ही अच्छा आया है।'

इस तरह ध्यान में भी अनासक्ति होनी चाहिए। गीता में कहा है: 'ध्यानात् कर्मफलत्यागः।' ध्यान करने से कर्म-फल का त्याग हो जाता है। इसलिए यदि निश्चय करें कि पाँच, दस या पन्द्रह मिनट ध्यान करना है तो वह गम्भीरता के साथ हो सकता है। इसके लिए सभीको निमंत्रण देना चाहिए और यदि कोई न पहुँचे तो पुनः बुलाने भेजना चाहिए। कोई भूखा हो तो हमें अच्छा नहीं लगता। यदि कोई कहे कि हमें भूख नहीं लगी, पेट खराब है तो वह समझ में आ भी सकता है। नहीं तो उसका भूखा रहना बुरा ही लगेगा। उसके लिए दया आती है कि बेचारा भूखा है। इसी तरह यदि कोई ध्यान न करता हो तो उसके लिए दया आनी चाहिए।

फिर ध्यान का समय भी ऐसा नहीं रखना चाहिए, जिससे किसीकी तितिक्षा की कसौटी हो। प्रार्थना के लिए बिलकुल तड़के उठना पड़े, यह ठीक नहीं है। सबके लिए अनुकूल समय ही रखना चाहिए। साधारणतः सूर्योदय और सूर्यास्त ये दोनों समय रखे जा सकते हैं। इसमें किसीको विशेष कष्ट नहीं हो सकता। सुबह ४ बजे सभी उठ नहीं पाते हैं। हमें अन्य गुणों की कसौटी करने की कोई जरूरत नहीं, ध्यान की ही मुख्य जरूरत है। फिर भोजन के दस मिनट पहले भी ध्यान किया जा सकता है। भोजन भी मौनपूर्वक होना चाहिए। भोजन शुरू करने के साथ ही मौन भी शुरू कर दें और भोजन पूरा होने तक उसे बनाये रखें। यदि ऐसा हो तो काफी लाभ होगा।

कार्यकर्ताओं की यह शिकायत रहती है कि हम सबको कर्मयोग में जुट जाना पड़ता है, जिससे हमें चिन्तन का समय ही नहीं मिलता। यदि कार्यकर्ता इस तरह करें तो वे चिन्ता-मुक्त हो सकते हैं। दिन-प्रति-दिन मुझे इन सब बातों की बहुत जरूरत महसूस होने लगी है। मैं पवनार में इसी तरह एकान्त ध्यान करता था, किन्तु अब लगता है कि वह सामूहिक रूप से करना चाहिए।

●●●

प्रार्थना-प्रवचन

चांडप (साबरकांठा) ६-१-'५९

सतयुग आ रहा है : कलियुग जा रहा है

सतयुग आ रहा है। कलियुग जा रहा है। कलियुग का अर्थ है, जिसमें मानव आमने-सामने एक दूसरे से लड़े, मारे-काटे। ऐसा युग अब खत्म होने जा रहा है। इसका पता पहले गाँववालों को ही लगेगा, क्योंकि वे शहरवालों से पहले जाग जाते हैं। शहरवालों से काफी माया लिपटी हुई है, अतः वे माया में घोर निद्रा लेते हैं। उनमें कुछ तो ईश्वर तक को नहीं मानते। लेकिन गाँववालों की ऐसी स्थिति नहीं है। जिस तरह वे खेती के लिए बैल और औजार आवश्यक मानते हैं, उसी तरह ईश्वर को भी कहते हैं, हमें बीज चाहिए, हल चाहिए, बैल चाहिए और सबसे ऊपर भगवान की कृपा चाहिए। यदि भगवान की कृपा रही तो समय पर बारिश होगी और वह अधिक भी नहीं होगी। हम लोग सर्वथा भगवान पर निर्भर हैं। उनका भगवान से सीधा संपर्क रहता है। वे भगवान के भक्त हैं। भगवान की भक्ति का बहुत बड़ा साधन शरीर-श्रम कर जो मिले, उसमें सन्तुष्ट रहना है। वेद में कहा है: 'कृषिमित् कृषस्व' अर्थात् तुम कृषि करो और जो कुछ मिले, उसीमें सन्तुष्ट रहो। ये लोग यही करते हैं।

लक्ष्मी और पैसे का विरोध

अवश्य ही कृषि में पैसा कुछ कम मिलता है, पर सच्चे अर्थ में वही लक्ष्मी है। जो मेहनत-मजदूरी कर प्रामाणिकता के साथ रहता है, उसीको लक्ष्मी का दर्शन होता है। लक्ष्मी हमेशा शाम को घर-घर घूमती और देखती है कि किसके घर में दिया जल रहा है, कहाँ काम चल रहा है? वहीं वह निवास भी करती है। जहाँ अँधेरा रहता है, लोग आलसी बनकर पड़े रहते हैं, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। किन्तु आज तो लक्ष्मी गाँववालों के पास से भी भाग जाना चाह रही है, क्योंकि वे लोग पैसे को ही अधिक महत्त्व देने लगे हैं। वे पैसे के लिए ही मूँगफली, तम्बाकू, कपास, हरदी, सन आदि की फसल अधिक-से-अधिक पैदा करने लगे हैं। उससे

पैसा भी अधिक मिलता है और फिर उसका खर्च भी पानी की तरह हो जाता है। जब घर में पैसे का महत्त्व बढ़ता है तो लक्ष्मी भागने लगती है।

पैसे की माया बड़ी अजीब है। पैसेवाले अपने बच्चे तक का विश्वास नहीं रखते। सर्वत्र ताले जड़े रहते हैं और चाभियाँ उनकी जनेऊ में लटकती हैं। २॥ हजार वर्ष पूर्व भारत की स्थिति के सम्बन्ध में एक यूनानी इतिहासकार लिखता है कि यहाँ श्रीमान लोग रात में घर खुले रखकर सोते थे। घरों पर ताले नहीं लगते थे। लेकिन आज पैसा बढ़ गया तो उसका व्यय भी उसी परिमाण में बढ़ गया है। जीवन भर तक डॉक्टरों का पीछा नहीं छूटता। सच पूछिये तो आज पैसा बढ़ा तो उसके साथ दारिद्र्य भी बढ़ता जा रहा है। पैसे का मूल्य ही घट गया है। ५० वर्ष पहले जब मैं बड़ोदा में बाजार जाता तो एक ही पैसे में थोड़ा-सा शाक, धनिया, मिरचा, आदि सब कुछ ले आता था। लेकिन आज इतना लाना हो तो बारह आने से कम न लगेगा। आज पैसा बढ़ा, पर दूध, घी नहीं बढ़ा। वनस्पति घी का बाजार गर्म है, शुद्ध घी देखने को नहीं मिलता। मिलावट की तो पूछिये ही नहीं! रोगी के लिए दी जानेवाली दवा में भी जब मिलावट कर पैसे खड़े किये जाते हैं तो इससे बढ़कर अपराध और निर्दयता क्या हो सकती है? जब तक आदमी जीवित रहता है, तब तक तो हम उसके लिए दया ही नहीं दिखाते और वह जब मर जाता है तो उसके नाम पर खूब लड्डू खिलाते हैं। जन्म से लेकर मरने तक सभी कामों में लड्डुओं का काम लगा ही रहता है। अब हर व्यवहार में कठोरता और निष्ठुरता कूट-कूटकर भर गयी है। इसका एकमात्र कारण यह पैसे की माया है। जब तक माया छूटती नहीं, तब तक क्रूर कर्मों से मुक्ति नहीं मिल सकती। सतयुग ही इसमें से मुक्ति दिला सकता है और वही सतयुग अब शुरू हो गया है।

आदर्श ग्राम का चित्र

अभी-अभी मैं बनासकाँठा से आ रहा हूँ। वहाँ सतयुग है तो साबरकाँठा में वह क्यों नहीं हो सकता? बनासकाँठा में ६०।७० ग्रामदान हुए तो यहाँ और अधिक क्यों न हों? यहाँ काम करनेवाले नहीं मिलते। किसीको काम की पड़ी ही नहीं है, किंतु यह स्थिति ठीक नहीं है। यदि गाँव-गाँव काम करनेवाले सेवक तैयार हो जायँ तो यह काम बहुत ही जल्दी आगे बढ़ सकता है। वे गाँव-गाँव जाकर समझायें कि जिस तरह हवा, पानी सभीके लिए हैं, उसी तरह जमीन भी सबकी होनी चाहिए। जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। गाँव में स्वराज्य लाना चाहिए। गाँववाले परिश्रम करें, ग्रामोद्योग खड़े करें और गाँव की आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी करें। गाँव का दही, दूध और मक्खन गाँव के बच्चों को खिलाकर, बचने पर ही शहरों में भेजें। इस तरह करेंगे तो देखेंगे कि सत्ता आपके हाथ में आ जायगी और सतयुग का आरम्भ हो जायगा। आप चाहते हों तो बनासकाँठा की तरह यहाँ भी सतयुग आ सकता है। सतयुग का अर्थ है मालकियत सबकी होना, एक-दूसरे की मदद करना, कोई चीज किसी एक की न रहना। सतयुग लाने का यह विचार किसे-किसे पसन्द है, वे हाथ उठायें (लगभग सभीने हाथ उठाये)। सभी इस विचार का स्वागत कर रहे हैं, अतः यह प्रस्ताव पास हो रहा है। अब गाँव में आलस्य नहीं रहे, झूठ नहीं रहे। कोई बेकार नहीं रहे, कोई मालिक नहीं रहे। गाँव का झगड़ा गाँव से बाहर न जाय। सभी एक होकर रामायण-महाभारत पढ़ें। इसीका नाम ग्रामदान है। इसीका नाम सतयुग है। कलियुग बीत गया, यह समझकर और भगवान का स्मरण करते हुए, यह मानकर कि अब हम सतयुग में दाखिल हो गये हैं, काम करना चाहिए।

सर्वोदय-पात्र और सर्वोदय-सेवक

यहाँ बारह ग्रामदान हुए हैं। क्या ये बारह के बारह ही रहेंगे या आगे भी बढ़ेंगे? गाँव-गाँव यह सन्देश पहुँचाना होगा। बापू ने सन् १९४२ में अंग्रेजों से कहा कि 'भारत छोड़ो?' उनका सन्देश हरएक ने गाँव-गाँव, शहर-शहर पहुँचाया। हरएक की जबान पर 'भारत छोड़ो' बैठ गया। फलस्वरूप पाँच ही वर्षों में अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। इसी तरह 'जमीन भगवान की है, मालकियत किसीकी नहीं, कलियुग चला गया' बोलते जायँगे तो वह भी सफल होकर रहेगा। किन्तु गाँव-गाँव में यह विचार पहुँचानेवाले सेवक चाहिए। इन सेवकों की सेना खड़ी करनी चाहिए। इसके लिए घर-घर में सर्वोदय-पात्र होना चाहिए। आप लोग अपने-अपने घरों में सर्वोदय-पात्र रखें तो साबरकाँठा में सर्वत्र सेवक हो जायँगे।

आज ही जिले के भाई (चुन्नीभाई) आये थे। उन्हें मैंने सन्देश दिया कि 'पूरा साबरकाँठा ग्रामदान हो जाना चाहिए।' गांधीजी के कारण साबरमती को गंगा का पुण्य प्राप्त हो गया है। इसके किनारे पर बसे हुए इस जिले का ग्रामदान होना चाहिए।' उस भाई ने कहा—'हाँ, अवश्य होगा।' मैंने पूछा—'क्या भगवान को मानते हैं?' उन्होंने कहा—'हाँ, मानते हैं।' जो 'हाँ' कहे, वही आस्तिक है। इस तरह हमें पूरे जिले की बात करनी चाहिए, तभी काम होगा। जब सभी लड़के-लड़कियों ने हाथ ऊपर उठाये हैं तो क्या अब सतयुग आने में देर लग सकती है? यदि हम इसका जप करते रहें तो यह अवश्य होगा। यह सब तो होगा, पर शान्ति-सैनिक कहाँसे मिलेगा? क्या चुन्नीभाई शान्ति-सैनिक के लिए तैयार हैं? (चुन्नीभाई ने 'हाँ' कहा)। लीजिये, शांति-सैनिक भी मिल गया। अब आप लोगों की सम्मति चाहिए। अतः घर-घर सर्वोदय-पात्र रखिये।

यह सब तो आप समझ ही गये। अब पाँच मिनट भगवान की प्रार्थना करें। सतयुग में शब्दों से प्रार्थना नहीं होती। हृदय से भक्ति होना ही पर्याप्त है। बोलने न आये तो भी यह प्रार्थना हो सकती है। अतः पाँच मिनट सतयुग की यह प्रार्थना करें। ●●●

आज एक भाई ने कहा कि 'मुझे क्रोध आता है, दिल में शान्ति नहीं रहती है, तब मैं शान्तिसैनिक कैसे बन सकता हूँ?' मैंने कहा: 'भले ही क्रोध आये, लेकिन तुम क्रोध आना बुरा मानते हो तो शान्तिसैनिक बन सकते हो। यह तुम्हारा उस ओर एक प्रगति का कदम ही माना जायगा। इसलिए हिम्मत के साथ शान्ति-सैनिक बनना चाहिए। मानव को दोष के बारे में क्रोध हो सकता है, यह कमजोरी ही है। लेकिन यह कमजोरी भी मिट जायगी, इस हिम्मत के साथ श्रद्धा रखें, श्रद्धा के प्रति श्रद्धा रखें तो हम हिम्मत के साथ बहुत काम कर सकते हैं। ●●●

स्वागत-प्रवचन

वेरावण (साबरकाँठा) ७-१-'५९

ग्रामधर्म और विश्वधर्म में भेद नहीं

प्रभात की वेला में मंगलवाद्यों के साथ, इतने सारे ठाठ-बाट से आप लोग मेरा स्वागत करने आये हैं। इसीसे आपके हृदय की भावनाएँ स्पष्ट परिलक्षित हो रही हैं। जब हृदय में भाव भर जाता है, तभी वह बाहर उमड़ने लगता है। आप लोगों ने यह 'जय-जगत्' के नारे भी लगाये। अब आप लोगों को ग्रामदान भी करना चाहिए। यह परम मंगल हो जायगा।

हम लोग बहुत दूर से आ रहे हैं। सात-आठ वर्षों से पैदल घूम रहे हैं और जनता को हित की सलाह दे रहे हैं। आप लोगों ने हमारा स्वागत किया। अतः यह स्पष्ट है कि हम आपके हित के विरुद्ध कुछ नहीं कहते। यदि ऐसा कहते होते तो आप हमारा स्वागत ही क्यों करते? आपके ये रविशंकर महाराज पचासों वर्षों से सेवा कर रहे हैं, वह भी आपके हित के लिए ही हैं। ये और हम जो कुछ कहेंगे, आपके भले के लिए कहेंगे, यह आप गाँठ बाँध लीजिये।

अभी तक धर्म की स्थापना नहीं हो पायी है। ग्रामदान के बाद ही वह हो सकेगी। जाति, धर्म, वर्ग, जिला, प्रान्त, राष्ट्र आदि सारी बातें बीच के कार्यकाल में इस व्यापक मानव-धर्म के विकास में बाधक हुई हैं। ग्रामदान मूलक ग्रामधर्म की स्थापना के बाद ये सब बातें मिट जायँगी। फिर जहाँ मानव एक साथ रहेंगे, वहीं धर्म प्रकट होगा। यह बुनियादी बात है। इसीके आधार पर विश्वधर्म के मन्दिर की स्थापना होगी। आज तो पूजा, चन्दन, तिलक, आरती वगैरह ही धर्म बन बैठे हैं। लेकिन ये धर्म नहीं, अपितु भावना दृढ़ करने के लिए एक सहज उपासना है। जब इसके द्वारा भावना दृढ़ हो, जीवन के विचार निश्चित हो, जीवन-निष्ठा हो, सत्यनिष्ठा और प्रेम रहे, किसीसे द्वेष न किया जाय, किसीको न सताया जाय, व्यक्तिगत मालकियत न रहे, सारी मालकियत समाज की हो जाय, संग्रह न किया जाय, तभी धर्म की स्थापना हुई, यह कहा जायगा। ये सब बातें तभी होंगी, जब कि ग्रामदान के आधार पर ग्रामस्वराज्य की स्थापना होगी।

सामूहिक शक्ति का आन्दोलन

हमें ग्रामदान की बात पूरी तरह समझनी चाहिए। अगर हम गाँव के सब लोग मिलकर सामूहिक शक्ति प्रकट नहीं करेंगे तो आज के विज्ञान के युग में टिक नहीं सकेंगे। व्यक्तिवादी युग अब बीत गया है। अब तो सामूहिक पराक्रम का युग आया है। ग्रामदान का विचार उसी सामूहिक पराक्रम को प्रकट करने का विचार है। अगर इस विचार में सामूहिक शक्ति को प्रकट करने की प्रक्रिया न होती तो मैं आठ साल तक इस तरह नहीं घूमता।

वास्तव में ग्रामधर्म और विश्वधर्म में कोई फर्क नहीं है। ग्रामधर्म का अर्थ है, गाँव के लोग एक परिवार बनाकर रहें। विश्वधर्म का अर्थ है, भिन्न-भिन्न स्थानों एवं देशों में रहने वाले लोग एक-दूसरे का भला चाहें और किसीके विरोध में काम न करें। ये दोनों धर्म एक ही हैं। एक छोटी नींव पर खड़ा है तो दूसरा बहुत व्यापक नींव पर है। भगवान विष्णु की छोटी मूर्ति और बड़ी मूर्ति दोनों विष्णु ही होते हैं, अलग नहीं। इसी तरह ग्रामधर्म और विश्वधर्म में कोई फर्क नहीं है।

जब धर्म स्थापना होगी, तभी परम मंगल होगा। आज तो हृदय में मंगल भावना है, वाणी में मंगल शब्द हैं, मंगल वाद्य साथ हैं, यदि इनके यह भी मंगल कार्य हो जायँ तो परम धर्म की स्थापना हो।

●●●

बूढ़ों में उत्साह और जवानों में धैर्य चाहिए

एक जगह किसीने तरुण-उत्साह-मण्डल की स्थापना की और मुझसे आशीर्वाद माँगा। मैंने उसे लिखा कि यदि 'वृद्ध-उत्साह-मण्डल' स्थापित हो तो मैं आशीर्वाद दूँगा, क्योंकि बूढ़ों में उत्साह नहीं हुआ करता। युवकों का तो 'युवक धैर्य-मण्डल' होना चाहिए। क्योंकि युवकों में उत्साह तो रहता है, पर धैर्य नहीं होता। इसलिए आप 'युवक-धैर्य-मण्डल' स्थापित करें तो अच्छा होगा। और बूढ़े 'वृद्ध-उत्साह-मण्डल' बनाये, वह उचित होगा।'

आज बूढ़ों में उत्साह और जवानों में जरा धैर्य आ जाय तो राष्ट्रनिर्माण का काम ठीक चल सकता है। लेकिन यदि जवान हों, उत्साह हो और धैर्य न रहे तो फिर क्या होगा? जानते हैं न वह श्लोक कि 'मर्कटस्य सुरापानम्' (पहले हो बन्दर, फिर मद्य पी लिया) वैसा ही हो जायगा। इसलिए युवकों को मेरी सलाह है कि वे धैर्य धारण कर जीवन के कर्म-क्षेत्र में आयें।

●●●

अनुक्रम

१. आनंद और साधना का··	कावा	७ जनवरी '५९	पृ० १७३
२. सतयुग आ रहा है···	चांड़प	६ जनवरी '५९	,, १७४
३. ग्रामधर्म और विश्वधर्म··	वेरावण	७ जनवरी '५९	,, १७६

●

जय ग्रामदान-जय जगत्

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित

फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।